दूसरा परिच्छेद

To see a world in a grain of sand,
And a Heaven in a wild Flower,
To hold Infinity in the palm of your Hand,
And Eternity in an Hour.

—— WILLIAM BLAKE.

मनुष्य के मन में अनन्त आकांक्षाएँ उत्पन्न होती रहती हैं । वह चाहता है कि रेत के सूक्ष्म कण में संपूर्ण विश्व का दर्शन करे, वह अभिलाषा करता है कि वन के फूल में स्वर्गिक सौन्दर्य का आस्वाद ग्रहण करें । उस की उत्कट कामना रहती है कि अनंतत्व को अपनी मुठ्ठी में बाँध ले । उस की यह आकांक्षा सदा बनी रहती है कि अेक घण्टे की स्वल्प अवधि में शास्वतत्व की अनुभूति प्राप्त कर ले । इन अभिलाषाओं को पूर्ण बनाने केलिअे वह निरन्तर प्रयत्नशील रहता है । कलाकार में यह प्रयत्न और भी अधिक तीव्र हुआ करता है । इसी प्रयत्न के फलस्वरुप साहित्य की सीमित परिधिवाली नवीन विधाएँ निर्मित हुई हैं । चाहे कहानी की विधा हो, चाहे अेकांकी की विधा हो या अन्य सीमित परिधि वाली कोई भी विधा हो, उस के मूल में कलाकार की यह प्रवृत्ति इस तरह काम करती रहती है कि उसे संक्षिप्तता में विशालता के, अेक घडी की स्वल्प अवधि में शाश्वतत्व के, सीमा में अनन्त के, सूक्ष्मता में स्थूलता के, साधारणत्व में असाधारणत्व के दर्शन होते हैं और वह उस अनुभूति को कलात्मक मार्मिकता के साथ अन्य जनों को प्रदान करता है । गोस्वामी तुलसीदास के ये शब्द "मंत्र परम लघु जासु बस, विधि हरि हर सुर सर्ब" - उपर्युक्त कला-दर्शन के संबंध में उपर्युक्त प्रकाश डालते हैं । लघु मंत्र में इतनी अतुलनीय शक्ति छिपी रहती है कि हरि हर विधि और अमरों तक उस के वशीभूत हो जाते हैं । लघुता में अनन्तता के इसी दर्शन के अेकांकी विधा के कलात्मक पक्ष का निर्माण किया है । जिस तरह लघु मंत्र अमोघ है उसी तरह इन विधाओं के माध्यम से प्रस्तुत जीवन का चित्रण अत्यन्त मर्मस्पर्शी अेवम् प्रभावोत्पादक रहता है । वास्तव में संक्षिप्तता की ही यह अद्भुत शक्ति है जिस के कारण यह विधा अत्यन्त

महत्वपूर्ण बन गई है । बिहारी के दोहों के समान इस केलिये गागर में सागर भरने की निपुणता आवश्यक है । अन्यथा यह अपनी मूल भूत सहज लक्षणों से वंचित हो जाती है और कुरूपता के कारण रसयुक्त होने के स्थान पर नीरस बन जाती है । डा. रामकुमार वर्मा ने अपनी "ऋतुराज" पुस्तक की भूमिका में इस विधा की व्यापकता के संबन्ध में विचार प्रकट करते हुये उसकी तुलना काम के कुसुम धनु से की है जिस के उचित प्रयोग से समस्त विश्व की समस्यायें वश में की जा सकती हैं । "काम कुसुम-धनु साधक लीन्हे । सकल भुवन अपने बस कीन्हें।" उन की यह तुलना अत्यन्त समीचीन है ।

विस्तृत परिधि में निर्मित वस्तु के लिये उतनी बारीक निपुणता की आवश्यकता नहीं पड़ती जितनी सीमित परिधि में निर्मित वस्तु के लिये वांछनीय होती है । चावल के दाने पर कलाकृति का अंकन कितना कठिन है । उस पर अगर संसार के किसी महान व्यक्ति के रूपांकन (पोर्ट्रेयिट) का काम किया जाय तो क्या कहना ? इस तरह सूक्ष्मता में स्थूलता का कलापूर्ण दर्शन करना और कराना विशिष्टता के द्योतक है । चावल के दानों पर अंकित कलाकृतियों के दर्शन करने के उपरान्त कोई भी आलोचक किसी कला की समीक्षा का आधार उसका स्वरूप मानना गलत समझेगा । रोलन्ड लूईस (Roland Luies) का यह कथन इसी वक्तव्य की पुष्टि करता है - Art of any kind must not be judged in the light of the cult of mere bigness
सच तो यह है कि किसी भी कृति का मूल्यांकन उसकी लंबाई चौड़ाई के आधार पर न करना चाहिये । उसकी कलात्मक सुन्दर अभिव्यक्ति को दृष्टि में रखकर उसकी समीक्षा प्रस्तुत करना अपेक्षित है । एकांकी संक्षिप्त रचना है । संक्षिप्तता ही उसकी आत्मा है । संक्षिप्तता ही उसके उद्गम की मूल प्रेरणा है । उस की परिधि तो अत्यन्त सीमित है, किन्तु प्रभाव की दृष्टि से बड़े नाटक या किसी विस्तृत परिधिवाले साहित्यिक माध्यम से किसी प्रकार कम महत्व नहीं रखती । केवल उस की संवेदना को उचित रीति से अभिव्यक्ति प्रदान करना अपेक्षित है ।

एकांकी की उत्पत्ति के मूल में एक अन्य प्रमुख तत्व भी काम करता है - वह है कुतूहल । कुतूहल वह बीज है जिस से विषय अपना रूप

धारण करता है और उसी विषय से कथावस्तु निर्मित होती है । प्रथम अेकांकीकार के मन में अैसे असाधारण प्रश्न उठते हैं जिन के उत्तर कुशल ढंग से देना अपेक्षित होता है । जीवन की साधारण घटनाओं में अैसे असाधारण तत्व की खोज प्रश्नों के सहारे की जाती है और उन उन संवेदनाओं की कल्पना अेकांकीकार अपनी प्रतिभा के बल पर करता है । मि. परसीवल वाइल्ड का यह कथन इस पर पूर्ण रूप से प्रकाश डालता है "कल्पना की गई कि अेक व्यक्ति ने दूसरे की हत्या कर दी । समाचार पत्र का संवाददाता घटना से अवगत होने पर भी अखबार के मुख-पृष्ट पर बड़े अेवं मोटे शीर्षकों में इस घटना का उल्लेख नहीं करता । उस की दृष्टि में इसका कोई विशेष महत्व नहीं रहता । अेक अपरिचित के द्वारा दूसरे अपरिचित की ~~क~~ हत्या की गई है । इस घटना में कोई अर्थ है न कोई महत्व । किन्तु जब वह यह सुनता है कि अेक कैदी जेलर को गोली मार कर भाग गया तब उस को अधिक महत्व देता है । क्यों कि इस से दो घटनाओं का समन्वय हो जाता है । इस के पश्चात् यह भी निश्चित रूप से विदित होता है कि मृतक जेलर अपने पीछे अपनी विधवा पत्नी और पाँच छोटे छोटे बच्चों को छोड़ गया है और अपराधी का यह प्रथम अपराध नहीं, उस ने इस से पहले और भी हत्याअें की हैं । सम्पादक की लेखनी अब उठती है । वह व्यक्ति के सुख-दुःख की सीमाओं से निकालकर इस घटना-चक्र का संबंध संपूर्ण राष्ट्र औरसमाज से स्थापित करता है । वह तर्क करने लगता है और उस के मन में इस घटना के मूल में काम करनेवाली अनेक बातें उठती हैं । जेल के अधिकारियों की असावधानी और शासन-सूत्र में ढिलाई होने के कारण अपराधी भाग गया । या किसी विरोधी राजनीतिक दल की सहायता गुप्त रूप से कैदी को प्राप्त हुई । अथवा जेल-यातनाओं को न सह सकने के कारण कैदी के मन में विद्रोह की भावना उत्पन्न हुई । अथवा जेलर कैदियों के साथ पक्षपात-पूर्ण व्यवहार करता था जिस से कैदी ने उत्तेजित होकर उस की हत्या की । या जेलर ने अेक कैदी स्त्री का अमानुषिक बलात्कार किया जिसे देखकर कैदी की मानवता जागृत हुई और प्रतिहिंसा के कारण उस ने जेलर का वध किया । इस प्रकार तरह तरह के विभिन्न प्रश्न उठते हैं । इसी तरह की घटनाओं से

कहानी निर्मित की जा सकती है। लेकिन जिस प्रकार संवाददाता और सम्पादक उस छोटी -सी घटना को आकर्षक बनाकर उस का संबन्ध मानवीय व्यापारों के साथ जोड़ देते हैं। उसी तरह अेकांकी में पूर्ण प्रभाव उत्पन्न करने केलिअे घटनाओं में अेकता स्थापित करना आवश्यक है। प्रभाव, अेकता उत्पन्न करने केलिअे घटनाओं का पारस्परिक संबंध स्थापित करना-अपेक्षित है। जब तक घटनाओं की कार्यगति का संबन्ध विस्तृत जीवन के साथ स्थापित किया न जाय तब तक वह सशक्त नहीं हो सकती। इस तरह कौतूहल के हेतु उत्पन्न अनेक प्रश्न अथवा समस्याअें सम्मिष्ट रूप में अेकांकीकार के मन में उठती हैं। उन की रूप-रेखाअें आपस मेंअैसी मिली रहती हैं जैसे ज्यामिति में वर्ग के भीतर वृत्त और वृत्त के भीतर त्रिकोण समाये रहते हैं।"[::] अेकता ही अेकांकी का प्राण है, अेकता ही उस की आत्मा है, अेकता ही उसका लक्ष्य है। अेकता की केन्द्र-बिन्दु के चारों ओर घटनाओं का चक्र घूमता है। बड़े नाटक और अेकांकी में इसी स्थान पर बड़ा भेद है। नाटक में कथावस्तु से संबन्धित बीती घटनाओं का विवरण विस्तार के साथ इस तरह दिया जा सकता है कि अंतिम अंक तक अथवा नाटक के फलागम तक कथावस्तु पूर्ण रूप से फैली रहती है। किन्तु अेकांकी में वह प्रभाव उत्पन्न करना है जो विस्तार और काफी समय लेकर नाटक में उत्पन्न किया जाता है। इस केलिअे अेकांकी की कथावस्तु का निर्माण इस तरह किया जाता कि मुख्य कथावस्तु के चारों ओर छोटी-छोटी घटनाअें सहायक रूप में काम करें और अन्तिम लक्ष्य की ओर कथावस्तु को अग्रसर करें। छोटी घटनाअें अन्तिम लक्ष्य की ओर उन्मुख होकर क्षिप्र गति से कथावस्तु के प्रवाह को प्रवाहित करती है। इस अेकोन्मुखता से दो काम सिद्ध होते हैं। अेक - कथावस्तु में स्थित मूल कौतूहल की व्यंजना प्रभावोत्पादक ढंग से दर्शकों को अपनी ओर आकृष्ट किये रहती है। दूसरा - अेकता से बृहत् जीवन से उस का संबंध स्थापित हो जाता है।

अेकांकी में अेक निश्चित प्रभाव को उत्पन्न करने केलिअे अेक ही लक्ष्य का होना अनिवार्य है और उस के लिअे परिस्थितियों की कल्पना में भी अेकोन्मुखता रहनी चाहिअे। इतना ही नहीं, अेकांकीकार की दृष्टि संपूर्ण रूप से अेक पात्र के चरित्र की ओर अथवा कुछ पात्रों के चारों

:: डा. रामकुमार वर्मा - ऋतुराज भूमिका पृ. 12

की ओर अेकोन्मुखता के साथ केन्द्रित होना अपेक्षित है ।* अेकांकी मानव जीवन या समाज के अेक पहलू अथवा उद्दीप्त क्षण का चित्र है । अतः उसका निर्माण भी अेक मूल विचार के आधार पर अेक निश्चित लक्ष्य को लेकर किसी अेक महत्त्वपूर्ण घटना या विशिष्ट समस्या अथवा विशेष परिस्थिति पर होता है । इन सब से अेक समष्टि प्रभाव को उत्पन्न करते हुये उसका पूर्ण विकास होता है । संक्षिप्त परिधि की विधा होने के कारण अेकांकीकार को वह स्वतंत्रता नहीं होती जो नाटककार को होती है । वह नाटककार की भाँति अेक से अधिक पात्र, अनेक घटनाओं या जीवन के विभिन्न पहलुओं का अंकन नहीं करता । उस के पास उतना समय कहाँ कि इन सब पर प्रकाश डाला जा सके ? अतः अेकांकी में अप्रधान अथवा व्यर्थ पात्र-चित्रण केलिअे स्थान नहीं देना चाहिअे ।** अेकांकीकार को अेकता, संक्षिप्तता तथा स्वल्प काल-अवधि का ध्यान रखना चाहिअे । अेकता की सिद्धि तभी संभव होती है जब चित्रित जीवन के उस पहलू पर अेकांकी के अन्य तत्व जैसे चरित्र चित्रण, कथोपकथन, वातावरण, अभिनयशीलता आदि प्रकाश डाले । अेकांकी की विशिष्टता

---

* It should aim at making a single impression should possess singleness of situation and should concentrate its interest on a single character or group of characters.

...Sydney Box- The Technique of ~~xxxx~~ One-Act-Play.

** Nor is he at liberty to display the manay sidedness of character by evolving various situations which will test the relations of his characters. The One-Act-Play form is not which lends itself easily to much subtlety of Characterization. It is essentially concentrated and single of purpose and for this reason impress the strictest discipline upon the playwright who makes use of it. The time factor is important while the speed of action may be accelerated or retarded, it must not be so far from that of real life that it is wholly rejected.

... Sydney Box.
The Technique of ONE-ACT-PLAY.

यही है कि कम से कम काल अवधि में संपूर्ण प्रभाव की सृष्टि करना, जीवन के अेक विशेष पहलू को पूर्णतः स्पष्ट कर देना अथवा किसी व्यक्ति विशेष की चरित्र-गत झांकी प्रस्तुत करना । लेकिन साथ ही साथ उसका चित्रण जीवन से सम्बद्ध रहना भी आवश्यक है, नहीं तो दर्शक उसे मिथ्या समझने लगते हैं । अर्थात् वह जीवन का सच्चा चित्र होना चाहिये । अेकांकीकार की संपूर्ण कुशलता इसी में है कि वह स्वल्प काल अवधि में मनुष्य जीवन की अेक सजीव झांकी का चित्र प्रस्तुत कर दे ।

इस तरह हम देखते हैं कि अेकता और संक्षिप्तता कौतूहल रुपी बीज से उत्पन्न दो कोपलें हैं जिन के कारण पौधे का विकास होता है । इन तीनों प्रधान तत्वों का निर्वाह कुशलता के साथ किया जाता है तो अेकांकी अपने में पूर्ण होकर सुन्दर कला कृति बन जाता है । डा. रामकुमार वर्मा के शब्दों में हम कह सकते हैं कि "विस्तार के अभाव में प्रत्येक घटना कली की भाँति खिल कर पुष्प की भाँति विकसित होती है । उस में लता के समान फैलने की उच्छृंखलता नहीं रहती ।"

जिस तरह उपन्यास के तत्वों और कहानी के तत्वों में साम्य रहता है पर पूर्णतः ये दोनों विधाअें अपना अलग अस्तित्व लिअे रहती है उसी तरह अेकांकी और नाटक में कुछ तत्वों का साम्य रहता है । 1. कथा वस्तु 2. संघर्ष या द्वन्द्व 3. संकलन त्रय 4. पात्र और चरित्र चित्रण 5. कथोपकथन अेवं 6. अभिनयशीलता । ये छः तत्व अेकांकी केलिअे भी उतना ही आवश्यक है जितना नाटककेलिअे । लेकिन परिधि की भिन्नता होता है जो इन दोनों विधाओं के बीच में लकीर खींचकर इन के रूढ़ों को अलग कर देता है । हम उन तत्वों का विश्लेषण नीचे प्रस्तुत करना चाहते हैं जिससे अेकांकी कला की विशिष्टताओं का विशदीकरण हो जाय ।

कथा वस्तु :---- अन्य साहित्यिक विधाओं के लिए जिस तरह विषय के चुनाव में व्यापक क्षेत्र है उसी तरह एकांकी के लिए भी विषय अनंत है । छोटी सी पिपीलिका से लेकर उस अनादि अनंत परब्रह्म तक जितने विषय फैले हुए हैं उन सब को एकांकी का रूप प्रदान किया जा सकता है । कहने का तात्पर्य यह है कि एकांकीकार को प्रेरणा देने के लिए अनंत जीवन उस के सम्मुख व्याप्त पड़ा हुआ है । आवश्यकता केवल इस की रहती है कि वह उन से ऐसी प्रेरणा प्राप्त करे, जो नाटकीयता के लिए उपयुक्त हो अर्थात् नाटकीय तत्वों के समावेश के लिए उस में काफी अवकाश हो । वह किसी विचार से, किसी कल्पना से या किसी अनुभूति से प्रेरणा पा सकता है । उन्हीं के अनुरूप पात्रों का चरित्र चित्रण, मर्म स्पर्शी वातावरण एवं विशेष परिस्थिति की रूप कल्पना की जाती है तो एकांकी वस्तु का विषय पूर्ण हो जाता है । उन उन घटनाओं अथवा अनुभूतियों के नाटकीय क्षण को पहचानने की प्रतिभा एकांकीकार में होनी चाहिए । ऐसे प्रतिभावान एकांकीकार को विषय के चुनाव में कोई कठिनाई आ उपस्थित नहीं होती । इतिहास, लोकगाथा, समाज, मानवीभाव, जीवन चरित्र, प्रचारात्मक विषय, धर्म, राजनीति कहीं से भी कथानक लिया जा सकता है लेकिन उस विषय का वास्तविक जीवन से संबन्धित संबन्धित रहना आवश्यक है । कल्पना का प्रयोग वहीं तक होना चाहिए जहां तक यथार्थता नष्ट न हो । उस में उत्तेजना, विस्मय तथा रोचकता के गुण अपेक्षित हैं । विस्मय हीन कथानक एकांकी के लिए अनुपयुक्त होते हैं । उदाहरण के लिए डा. रामकुमार वर्मा के श्री विक्रमादित्य एकांकी के कथानक को ले सकते हैं । उस में तीनों आवश्यक गुण उत्तेजना, विस्मय और रोचकता है । विषय इतिहास से ग्रहण किया गया है किन्तु उस में कल्पना का भी समावेश उस हद तक हुआ है जहां तक ऐतिहासिक सत्य को हानि न पहुंचे । विक्रमादित्य की न्यायप्रियता तथा विवेक बुद्धि पर प्रकाश डालने वाली घटनावली का सृजन हुआ है । एकांकी के प्रारंभ से लेकर परिसमाप्ति तक प्रत्येक क्षण दर्शक में विस्मय तथा कुतूहल की मात्रा बढ़ती ही जाती है । स्त्री वेष धारिणी पात्र के कारण इस कथानक में उत्तेजना की सृष्टि होती है और उत्तेजना के मूल में विस्मय का भी बड़ा हाथ रहता है । इन दोनों से रोचकता की वृद्धि होती है । अतः कथानक के चुनाव में इन तत्वों को दृष्टि में रखना है आवश्यक है । इस चुनाव के पश्चात् कथावस्तु निर्मित होती है । कथानक को इस भांति काट छांटकर कथावस्तु का निर्माण किया जाता है कि एकांकी में प्रारंभ से ही नाटकीयता का समावेश होजाय और दर्शकों की दिलचस्पी बढ़ती जाय । Sydney Box इस विषय में लिखते हैं कि The Chief perhaps the only quality of Short-play's opening is that it must capture the audiences' interest.

सफल एकांकी के प्रारंभिक वाक्य में कौतुहल और विस्मय की अद्भुत शक्ति भरी रहती है । जिज्ञासा का सृजन कथावस्तु के प्रारंभिक अंश पर आधारित रहता है । कथावस्तु के प्रारंभ के विषय में मत भेद है । Lewis Carroll कहते हैं कि Begin at the beginning and go on till you come to the end. Then Stop.
इस के विरुद्ध परसीवल वाइलड का कथन है कि To begin with the beginning is too much like a train without inquiring its destination. It may set him down a hundred miles from nowhere. Therefore the playwright should begin at the end and go back till you come to the beginning. Then start.

इस तरह एकांकी का प्रारंभ अंत से होकर पीछे से प्रारंभ स्थान तक पहुंचना कलात्मक विधान है । हमारे मतानुसार एक तीसरा भी विधान है । वह यह है कि कथानक के मध्य की तंतु से कथावस्तु का आरंभ कर अन्य तन्तुओं को कलात्मक ढंग से संजोना है जिस से दर्शकों की जिज्ञासा वृत्ति अंत तक बनी रहती है । प्रथम विधान में वह कलात्मक चातुर्य नहीं है जो द्वितीय विधान में है । हमारे मत में द्वितीय विधान की अपेक्षा तृतीय विधान अधिक प्रभावोत्पादक तथा मार्मिक है । इन विधानों में से किसी एक का प्रयोग एकांकीकार अपनी रुचि के अनुसार कर सकता है ।

गृहीत कथावस्तु के निरूपण में ही एकांकीकार की निपुणता लक्षित होती है । कथावस्तु के निरूपण को चार भागों में विभाजित कर सकते हैं ।

१. उद्घाटन या प्रारंभ २. अवरुन्धन अथवा उत्थान ३. चरमसीमा
४. परिणति या परिसमाप्ति.

प्रारंभ ऐसे कथोपकथनों से होना आवश्यक है जो कथावस्तु के महत्वपूर्ण अंश से संबन्धित हो । वस्तु के उस सूत्र को प्रथम दर्शकों के सम्मुख रखना चाहिए जिसे देखकर दर्शकों के मन में जिज्ञासा की वृत्ति जागृत होवे और वे आंखें फाडकर, कान खोलकर आगे की घटनावली के लिए उत्सुकता के साथ लग रहें । उस में बीती घटनाओं की भी व्यंजना हो पर दर्शक असली सूत्र को पकड़ न पावे । पटाक्षेप होने तक दर्शकों में उत्सुकता वैसी ही रहे किन्तु बीती घटनाओं का परिचय भी उन्हें होता चले । उद्घाटन इसीकारण से एकांकीकार के लिए अत्यधिक कठिन कार्य है ।

उस में एक ओर अंतिम लक्ष्य की ओर संकेत का रहना भी अवश्यकीकअौर आवश्यक है और दूसरी ओर कथावस्तु की आत्मा पर प्रकाश विकीर्ण करने की शक्ति भी रहे, किन्तु साथ ही साथ दर्शकों की जिज्ञासा और विस्मय की मात्रा में किसी प्रकार की कमी न होने पावे । वास्तव में किसी भी साहित्यिक विधा का प्रारंभ अत्यन्त कठिन है । हर एक कलाकार यही अनुभव करता है कि किसी न किसी तरह इस का प्रारंभ हो जाय तो वह अपने रूप को आप संवार कर कलाकृति बन जाता है । एकांकी के वस्तु-निरूपण में भी यही बात देखी जाती है। प्रो. बेकर के विचार इस संदर्भ में उल्लेखनीय हैं -- " उद्घाटन का तरीका तर्कसंगत और साफ़ हो अर्थात जो कुछ दिखाया जाय वह स्वाभाविक और विश्वसनीय हो । वह तरीका इतना आकर्षक हो कि दर्शकों को चुम्बक के सदृश अपनी ओर खींच ले और साथ ही साथ प्राथमिक उद्घाटन की गति तीव्र और सीधी हो" डा. रामकुमार वर्मा के किसी भी एकांकी के प्रारंभिक अंश को देखने पर उद्घाटन की उपर्युक्त विशेषता अवगत होती है । विशेष रूप से उन के " श्री विक्रमादित्य " एकांकी इस दृष्टि से अवलोकनीय है । इस में विभावरी पात्र का सृजन विस्मय की केन्द्र बिन्दु है। कुतूहल और विस्मय के झूले में झाँकें खाते हुए कथावस्तु क्षिप्रगति से चरमसीमा तक पहुँचती है । इसी कारण से इस एकांकी का उद्घाटन भी वैसे ही आकस्मिक ढंग से हुआ है जो दर्शकों को चुम्बक, की तरह अपनी ओर आकृष्ट किये रहता है । उन की दृष्टि घटनावली में इस तरह केन्द्रित हो जाती है कि अन्य बाह्य विषयों का ज्ञान उन्हें नहीं होता । इस तल्लीनता का रहस्य उद्घाटन की कुशलता में है। श्री विक्रमादित्य में उद्घाटन इस प्रकार होता है -- न्याय सभा के बाहरी कक्ष में सिंहासन पर आसीन होकर विक्रमादित्य विभावरी से प्रश्न करते हैं ---- " आश्चर्य " है ! उज्जयिनी में तुम्हारा अपमान हुआ ? " विभावरी के इस अपमान के मूलाधार पर कथावस्तु विकसित हुई है । इसइस अपमान का विवरण आगे दर्शकों को मिलता है -- उसी विवरण में पात्रों के चरित्र का विश्लेषण भी होता जाता है । प्रारंभिक वाक्य के सुनते ही दर्शकों में विभावरी के अपमान संबन्धी विषय को जानने की स्वाभाविक इच्छा उठती है । आगे चलकर विभावरी के रहस्यमय चरित्र के आवरण को हटाने की चेष्टा दर्शक करने लगते हैं । यह रहा कथावस्तु के अत्यन्त प्रमुख सूत्र का आकस्मिक उद्घाटन । ऐसे एकांकी भी हैं जिन में मुख्य अंश का प्रतिपादन तीव्र गति से न होकर थोड़ी धीमी गति से हुआ हो । लेकिन उन में भी प्रस्तुतीकरण की कला - निपुणता दर्शनीय है ।

डा. वर्मा के 'दीपदान' में उद्घाटन आकस्मिक रूप से नहीं किया गया। मुख्य दो घटनाओं का संकेत प्रथम वाक्य ही में नहीं मिलता अपितु कथोपकथन के क्रमिक विकास में उन का उल्लेख किया गया है। कुंवर उदयसिंह की हत्या करने के लिए बनवीर ने तुलजा भवानी के सम्मुख नृत्य का आयोजन किया। नर्तकियों के दीपदान का प्रसंग इस तरह छेड़ा जाता है कि राणा सांगा को कुल-दीपक कुंवर उदयसिंह भोलेपन में कह उठता है कि -- " कहीं तुम मुझे दान न कर देना धाय मां।" इस में नृत्य का आयोजन और दीपदान प्रमुख अंश है। अंत में धाय पन्ना अपने जीवन का दीप- पुत्र-का दान कर देती है। इस भांति उद्घाटन के मंद होने पर भी आवश्यक सूचना दर्शकों को दी गई है।

उद्घाटन के पश्चात् अवरुन्धन की स्थिति आती है। इस स्थिति में नाटक की समस्याएं सुलझने के स्थान पर इतनी उलझ जाती है कि उस के हल निकालने के प्रयत्न में दर्शक अपनी सारी शक्ति लगा देते हैं। अवरुन्धन से भी दर्शकों की कुतूहलता की मात्रा बढ़ती है। नाटकीय परिस्थितियों को उलझाकर एकांकी की प्रगति की जाती है। दर्शकों में संशय, विस्मय, कुतूहल आदि भावनाएं एक साथ आ घेरती हैं। " श्री विक्रमादित्य " एकांकी में अवरुन्धन की स्थिति अधिक प्रभावोत्पादक है। उस की चरम नाटकीय परिस्थिति इस तरह बनाई गई कि दर्शक सोच में पड़ जाते हैं कि कहीं उनका अनुमान गलत तो नहीं निकलेगा ? इस में विभावरी सम्राट विक्रमादित्य के सम्मुख यह अभियोग लाती है कि उसका अपमान एक पुरुष द्वारा हुआ है। सम्राट विक्रमादित्य उस का विश्वास कर अभियुक्त की परीक्षा लेते हैं। लेकिन अभियुक्त कभी अपने को स्त्री कभी अपने को पुरुष बताता है। सम्राट के साथ दर्शक भी संदेह में पड़ जाते है। इस तरह समस्या उलझती जाती है। दर्शकों के मन में यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि अभियुक्त पुरुष या स्त्री ? कथावस्तु की गति और आगे बढ़ती है और यह अवगत होता है कि विभावरी स्त्री नहीं है तो दर्शकों के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता। इस तरह अवरुन्धन की स्थिति में एकांकीकार का यह प्रयत्न रहता है कि दर्शकों की दिलचस्पी को बढ़ा दे, उन के ध्यान को इधर-उधर घुमा-फिराकर उन के अनुमान के विरुद्ध हल को प्रस्तुत करें। अवरुन्धन से संशयात्मकता उत्पन्न होती है। दर्शक एकांकी की समस्याओं के उलझन सुलझाने के प्रयत्न करते हुए संशय में पड़ जाता है। वह प्रगति: निश्चय नहीं कर पाता कि आगे की कथा किस तरह अपने रूप को संवारेगी ? एकांकी की सफलता संशय की तीव्रता की मात्रा पर आधारित है।

वस्तु निरूपण में चरमसीमा का महत्वपूर्ण स्थान है । इस स्थान तक पहुंचकर सब घटनाएं एकाकार न हो जाती हैं । तीव्र गति के साथ कथा वस्तु का प्रवाह प्रवाहित होता है और इस केन्द्र में आकर स्थिरता को प्राप्त करता है । " जब कथानक द्रुतगति से आगे बढ़ता है तो एक एक भावना घटना को घनीभूत करते हुए गूढ़ कौतूहल के साथ चरमसीमा में चमक उठती है । समस्त जीवन एक घंटे के संघर्ष में और वर्षों की घटनाएं एक मुस्कान या एक आंसू में उभर आती है । वे चाहे सुखान्त रूप में हो चाहे दु:खान्त रूप में । इस घनीभूत घटनावरोह में चरमसीमा विद्युत की भांति गतिशील होकर आलोक उत्पन्न करती है और नाटककार समस्त वेग से बादल की भांति गर्जन करता हुआ नीचे आता है ।" (२)

वस्तु की परिणति या परिसमाप्ति के अंतिम भाग को कुछ लोग नहीं मानते । उन के अनुसार एकांकी की समाप्ति चरमसीमा के साथ हो जानी चाहिए । चरमसीमा में आकर एकांकी का मुख्य उद्देश्य स्पष्ट हो जाता है । चरमसीमा के पश्चात् कथानक का विस्तार प्रभाव को कम कर देता है । डा. रामकुमार वर्मा का कथन है कि " चरमसीमा के बाद ही एकांकी नाटक की समाप्ति हो जानी चाहिए नहीं तो समस्त कथानक फ़ीका पड़ जाता है । चरमसीमा के बाद घटना विस्तार वैसा ही अरुचिकर है जैसे प्रेयसी से बातें करने के बाद आटे-दाल का हिसाब करना ।" डा. रामकुमार वर्मा के एकांकी नाटक चरमसीमा में आकर समाप्त हो जाते हैं । उन के समुद्रगुप्त पराक्रमांक नाटक की समाप्ति चरमसीमा पर आकर हो जाती है । ००० इस में अपहृत रत्नों की प्राप्ति होती है और अपराधी घतलकीर्त्ति अपने अपराधको स्वीकार करते हुए आत्महत्या कर लेता है । इस के पश्चात् कथानक को आगे बढ़ाना अनावश्यक है । यहां चरमसीमा और नाटक की परिणति एक साथ हो जाती है । उद्घाटन भाग में जितना विस्मय होगा, अवरुन्धन भाग में जितना, संशय होगा, चरमसीमा भाग में जितना द्वन्द्व होगा परिणति भाग में जितनी स्वाभाविकता होगी उतना ही एकांकी श्रेष्ठ होगा । (१) वस्तु निरूपण की इन चारों स्थितियों के निर्वहण में एकांकीकार का कौशल लक्षित होता है ।

---

(२) डा. रामकुमार वर्मा -- रेशमी टाई पृ. १७.

संघर्ष या अन्तर्द्वन्द्व :-- एकांकी में संघर्ष या अन्तर्द्वन्द्व का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है । यह एकांकी का प्राण माना गया है । चरित्रों का सौन्दर्य अन्तर्द्वन्द्व से निखर उठता है । संघर्ष के भी दो भेद हैं --- बाह्य संघर्ष या बाह्य द्वन्द्व और आंतरिक संघर्ष या अन्तर्द्वन्द्व । जब दो बाह्य परिस्थितियों में संघर्ष होता है तो उसे बाह्य द्वन्द्व कहा कहते हैं । यदि यह संघर्ष एक व्यक्ति के मन के दो विरोधी भावों के बीच होता है तो अन्तर्द्वन्द्व कहा जाता है । अन्तर्द्वन्द्व से युक्त एकांकी अधिक प्रभावोत्पादक होते हैं जिन में पात्रों की मानसिक गुत्थियों पर पर्याप्त प्रकाश डाला जाता है । कारण यह है कि अन्तर्द्वन्द्व मनोविज्ञान से ही पुष्ट होता है । एकांकी की परिधि सीमित है अत: जब अन्तर्द्वन्द्व अधिक तीव्रता के साथ प्रस्तुत किया जाता है तो वह अधिक मार्मिक बन जाता है । अन्तर्द्वन्द्व से कथावस्तु की गति आदि से लेकर अंत तक बनी रहती है । डा. रामकुमार वर्मा के कुछ एकांकियों में उस अन्तर्द्वन्द्व का सफल प्रयोग मनोविज्ञान के आधार पर किया गया है । उन के ऐतिहासिक एकांकियों का चरित्र-चित्रण इसी के बल पर अत्यन्त सुन्दर बन पड़ा है । उन से रचित " शिवाजी " एकांकी के तीन पात्रों, शिवाजी, गौहरबानू और सोना की मानसिक स्थिति का अंकन इसी अंतर्द्वन्द्व के सहारे नाटककार ने किया है । शिवाजी के हृदय का अन्तर्द्वन्द्व एक क्षण में स्पष्ट हो जाता है जब कि गौहरबानू के सौन्दर्य को देखकर एक क्षण के लिए " यह दैवी वरदान ! " कह कर स्तंभित हो जाते हैं किन्तु दूसरे ही क्षण वे अपनी चरित्र दृढ़ता से गौहरबानू का परितोष करने के लिए एकांत चाहते हैं और यहीं कौतूहल की सृष्टि होती है । दर्शक या पाठक समझते हैं कि शायद शिवाजी गौहरबानू को पत्नी के रूप में स्वीकार कर लें किन्तु इस भावान्दोलन के बाद जब शिवाजी " मेरे सामने जीजाबाई ≠ और गौहरबानू में कोई फर्क नहीं है " कह कर अपने दृढ़ चरित्र का परिचय देते हैं तो हमारे सामने एक नाटकीय स्थिति आती है जिस में हृदय शान्त और पवित्र हो जाता है और नायक के प्रति हृदय में श्रद्धा का उदय होता है । इसी तरह सोना का अन्तर्द्वन्द्व भूमिका उठते ही सामने आती है जब वह अपने भाई यादव के न लौटने से दु:खी है । यह ममता और प्रेम का अन्तर्द्वन्द्व अंत तक चलता है । गौहरबानू के हृदय में भी अन्तर्द्वन्द्व है । वह नहीं जानती कि शिवाजी उस के साथ कौन-सा व्यवहार करेंगे ? इस द्वन्द्व की समाप्ति शिवाजी के " मां " कहने पर होती है ।(१) इस तरह इस एकांकी में पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व में मनोविज्ञान का विकास हुआ अथवा

---

(१) डा. रामकुमार वर्मा -- शिवाजी

मनोविज्ञान के सहारे पात्रों के चरित्र की सूक्ष्मता स्पष्ट हो गई है। एकांकी में पात्रों के चरित्र के संपूर्ण व्यक्तित्व के चित्रण के लिए पर्याप्त समय और अवकाश नहीं रहता। स्वल्प काल-अवधि में पात्रों के चरित्र का एक पहलू मात्र चित्रित किया जाता है। एकांकीकार पात्र की प्रमुख विशेषता चुन लेता है और उस को एक गहरी रेखा से अंकित कर देता है। चित्र को पूर्णत्व प्रदान करने के लिए दो चार और हल्की सी रेखाएं भी खींच लेता है। प्रधान रेखा के खींचने में अत्यन्त अधिक सहायक होता है। इसी कारण से अंत: संघर्ष प्रधान एकांकी अधिक मर्म स्पर्शी होते हैं। एकांकी नाटक का प्राण उस के संघर्ष में पोषित होता है। यह संघर्ष जितना अधिक नाटककार की विवेचन शक्ति में होगा, उतना ही जिज्ञासामय उनका नाटक होगा। (४)

संकलन त्रय:-- कार्य संकलन, स्थान संकलन और काल संकलन का निर्वाह एकांकी में होना आवश्यक है। अर्थात् एक संपूर्ण कार्य एक ही समय में एक ही स्थान पर घटित होवे। अगर एक से अधिक दृश्य हों तो घटनाओं की संख्या भी बढ़ती जायेगी। काल की अवधि भी बढ़ जाती है। इस से एकाग्रता भिन्न दिशाओं में बिखर जाती है और कौतुहल की सृष्टि न हो पायेगी। एकांकी का यही कौशल है कि बिना समय का विस्तार बढ़ाये, और बिना स्थानों के बदले, वह कौतूहल का संचय कर मनोविज्ञान में क्रांति उपस्थित कर दे। यह क्रान्ति चाहे यथार्थ में हो, आदर्श व्यक्ति में हो, चाहे घटना में। आधुनिक एकांकी में चरित्र और घटना का दिग्दर्शन एक ही दृष्टि में करा सकने की क्षमता है। (०) संकलन त्रय के निर्वाह से प्रभाव साम्य की सृष्टि भी हो जाती है। जो एकांकीकार इसका पालन करते हैं उस की कला निखर उठती है। डा. रामकुमार वर्मा संकलनत्रय को अधिक महत्व देते हैं। उन के एकांकियों में इस का निर्वाह पूर्ण तरह से हुआ है। वे साधारणत: अधिक दृश्यों की कल्पना नहीं करते। उन के एकांकियों में समस्त घटनाओं का केन्द्र एक ही स्थान हुआ करता है। इस के अपवाद के रूप में " राज्यश्री " जैसे एकांकी नाटक मिलते हैं पर उन की संख्या कम है। राज्यश्री में दो दृश्यों का विधान है। एक विन्ध्याटवी में दिवाकर मित्र के आश्रय का दृश्य, दूसरा वन प्रान्त का। समुद्रगुप्त पराक्रमांक एकांकी में तीनों संकलनों का निर्वाह हुआ है। भांडागार का बाहरी कक्ष एकांकी की कथावस्तु की समस्त घटनावली का केन्द्र है। भांडागार में सुरक्षित दो रत्नों की चोरी हो जाना प्रधान घटना है।

---

(४) डा. रामकुमार वर्मा -- रेशमी टाई भूमिका पृ. ७

(०) डा. रामकुमार वर्मा -- रजत रश्मि पृ. १०.

चोर की खोज निकालने की चेष्टा की जाती है और चरमसीमा तक घटनाओं का प्रवाह बह चलता है । चोर के पता चल जाने पर अर्थात् मूल स्वीकार कर धवलकीर्ति के आत्म हत्या कर लेने पर एकांकी की समाप्ति हो जाती है । इस घटना के घटने में उतना ही समय लगता है जितना उस घटना के जीवन में घटने से होता है । कार्यैक्य संकलन भी साथ ही साथ हुआ है । इस में किसी अन्य अनावश्यक प्रसंग की कल्पना नहीं की गई है जिस के कारण प्रभाव और वस्तु का ऐक्य नष्ट नहीं हुए । संकलन त्रय के निर्वाह से यह एकांकी प्रभावोत्पादक बन पड़ा है । रेडियो नाटक के लिए संकलन त्रय के पूर्ण निर्वाह की आवश्यकता नहीं पड़ती । मुख्य रूप से काल संकलन की अवहेलना करने पर भी रेडियो एकांकी उत्तम बन सकते हैं । कारण यह है कि रेडियो पर कथावाचक या वाचक की सूचना के द्वारा या विराम संगीत के द्वारा काल अवधि का बोध कराना सुलभ है । उसी तरह स्थान परिवर्तन का ज्ञान भी करवाया जा सकता है । कार्य संकलन का निर्वाह तो उस के लिए अनिवार्य है । नहीं तो प्रभाव साम्य उत्पन्न नहीं होता और एकांकी निम्न कोटि की रचना हो जाता है ।

पात्र या चरित्र चित्रण :----- बाह्य अथवा आंतरिक द्वन्द्व से नाटकीयता की उत्पत्ति होती है तो उस द्वन्द्व की आधार शिला पात्रों का सृजन है। पात्रों के चरित्र पर ही नाटकीय संघर्ष आधारित रहता है । पात्रों के अभाव में घटनाओं या परिस्थितियों अथवा मूल समस्या का कोई अस्तित्व ही नहीं रहता । पात्रों के महत्व को ध्यान में रखकर एकांकीकार को ऐसे पुरुष या स्त्री पात्रों की सृष्टि करनी पड़ती है जो कल्पना - प्रसूत होते हुए भी सजीव हों । वे कल्पना लोक से न उतरे हों, इसी लोक के यथार्थवादी मनुष्य हों । प्रधान पात्र के अतिरिक्त अन्य पात्र गौण होते हैं जिन के द्वारा प्रधान पात्र के चरित्र परिस्थिति और वातावरण को स्पष्ट किया जाता है । अपनी कार्य भिन्नता के आधार पर गौण पात्र चार प्रकार के होते हैं । माध्यम, उत्तेजक, सूचक और प्रभावोत्पादक । इन का उपयोग एकांकीकार अपनी कथावस्तु को विकसित करने के हेतु करता है । स्वगत कथनों की अधिकता से एकांकी में अस्वाभाविकता आ जाती है। इस से बचने के लिए " माध्यम " के रूप में गौण पात्र की सृष्टि की जाती है । प्रधान पात्र के मानसिक भावों को प्रकट करने के लिए यह माध्यम काम में लाया जाता है । डा. रामकुमार वर्मा रचित " औरंगजेब की आखिरी रात " में जीनत - उन्निसा बेगम पात्र की सृष्टि माध्यम के रूप में की गई है ।

कथावस्तु के सूत्र को उत्तेजित कर द्रुतगति से उसे आगे अग्रसर करानेवाले पात्र उत्तेजक हैं। डा. वर्मा रचित " रूप की बीमारी " में रूप अपनी बीमारी के कारण को डाक्टरों के सामने प्रकट कर कथावस्तु की गति को आगे बढ़ाता है। सूचक से भी कथावस्तु अपनी गति पकड़ती है। " सूचक " पात्र के द्वारा ऐसी सूचना दीजाती है जो कथावस्तु की मुख्य स्थिति का बोध कराती है।

प्रभावोत्पादक पात्रों की सृजना से एकांकी के प्रभाव में परिवर्द्धन हो जाता है। इन गौण पात्रों के स्थान पर किसी वस्तु अथवा प्राकृतिक व्यापार का उपयोग भी किया जा सकता है। डा. वर्मा कृत " १५ जुलाई की शाम " में तार और मनीआर्डर उत्तेजक के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। " रेशमी टाई " में अंगूठी ने माध्यम का स्थान ग्रहण किया है।

एकांकी में जब निर्जीव वस्तुओं का अस्तित्व भी सप्रयोजन होता है तो पात्रों की सृजना में प्रयोजन की उपेक्षा कैसे की जा सकती है ? चाहे प्रधान पात्र हो अथवा गौण, उस का रंगमंच पर प्रवेश और प्रस्थान सप्रयोजन होना आवश्यक है। पात्रों की संख्या जितना हो सके उसे कम होनी चाहिए। व्यर्थ पात्रों के लिए एकांकी में स्थान नहीं रहता। अगर आवश्यकतानुसार अधिक पात्रों का आगमन रंगमंच पर होवे तो उस का अवश्य एक उद्देश्य का होना अपेक्षित है। डा. रामकुमार वर्मा कृत " शिवाजी " एकांकी में दस पात्र है। इन में एक भी ऐसा पात्र नहीं है जिस को हटाकर भी कथावस्तु का विकास किया जा सकता हो। हर एक पात्र कथावस्तु की गति देने में सहायक हुआ है। " चारुमित्रा " में आठ पात्र हैं। इन के प्रवेश और प्रस्थान सप्रयोजन होता है। " चारुमित्रा " के गुणों की प्रशंसा रानी तिष्यरक्षिता करती है। लेकिन केवल उसी के द्वारा व चारुमित्रा के चरित्र की उज्ज्वलता का परिचय दर्शकों को संतुष्ट नहीं करता। क्यों कि चारुमित्रा तिष्यरक्षिता की दासी है। पक्षपात केकारण अपनी दासी के गुणों की प्रशंसा की जा सकती है। अत : स्वयंप्रभा का प्रवेश करा कर एकांकीकार प्रयोजन की सिद्ध करना चाहता है। स्वयंप्रभा महारानी से कहती है ----- " महारानी ! आज तक महाराज की सेवा उस ने जितनी श्रद्धा और भक्ति से की है उतनी पाटलीपुत्र की किसी सेविका ने नहीं। वह तो महाराज के अन्त: पुर की अंगरक्षिका है। महारानी, महाराज की इच्छा ही उस केकार्य का नाम है। वह कैसे विश्वासघातिनी हो सकती है ?" इसी तरह अन्य पात्रों के आगमन और प्रस्थान प्रयोजन सहित हुए हैं।

एकांकीकार कभी अपनी कृति का निर्माण नाटकीय कार्य गति को प्रधान रूप से दृष्टि में रखकर करता है तो कभी पात्रों के चरित्र को मुख्य रूप से ग्रहण करता है । इसी कारण से कभी नाटकीय कार्य गति के अनुकूल पात्रों का सृजन करना पड़ता है तब तो कभी पात्रों के चरित्र के अनुरूप नाटकीय कार्य गति की सृष्टि करनी पड़ती है । डा. वर्मा के " रूप की - बीमारी " में नाटकीय कार्य गति के अनुकूल पात्रों की सृष्टि की गई है । तो " दीपदान " में पन्नाधाई के चरित्र के अनुरूप नाटकीय परिस्थितियों की कल्पना की गई है । एकांकीकार को निष्पक्षता तथा तटस्थता के साथ पात्रों का चित्रण करना चाहिए । अगर उस की सहानुभूति नाटक के सब पात्रों के प्रति समान रूप से रहेगी । तो दर्शकों या पाठकों के मन में भी उन पात्रों के प्रति सहानुभूति की भावना उत्पन्न होती है । सहानुभूति के अभाव में एकांकीकार किसी पात्र के पक्ष को लेकर, किसी विचार धारा अथवा वाद के प्रचारक करने में संलग्न हो जाता है । इस से उस की कृतियाँ केवल एक वर्ग के लोगों को आनंद देने में समर्थ होती हैं । अत: एकांकीकार को सहानुभूति सब पात्रों के प्रति, चाहे वह पात्र पापी, अत्याचारी या कपटी हो, चाहे चरित्रवान, दृढ़व्रती, सज्जन हो, होनी चाहिए । यद्यपि एकांकीकार अपनी कल्पना के क्षेत्र में सर्व स्वतंत्र है तथापि उस से सृजित पात्र उस के हाथ की कठ पुतलियाँ बन गये तो, वे जीवन और मानवोचित संवेदनाओं से दूर होकर कृत्रिम हो जायेंगे । लेखकों से हमेशा यह शिकायत की जाती है कि वे अपने आदर्श की स्थापना करने के हेतु पात्रों का चरित्र चित्रण कल्पना के बल पर किया करते हैं जिस से वे पात्र उन के हाथ की कठपुतलियों मात्र० मात्र होते हैं । किसी व्यक्ति के चरित्र में प्रत्यावर्तन की अपेक्षा तभी कर सकते हैं जब वह व्यक्ति ऐसी परिस्थितियों तथा घटनाओं के बीच से गुजरे कि उन के घात-प्रतिघातों से उस के चरित्र की दिशा परिवर्तित हो सकती है। चरित्र के निर्माण करने में परिस्थितियों का प्रमुख हाथ रहता है । चरित्र की इस दिशा-परिवर्तन का निर्देश करते समय एकांकीकार को ऐसी परिस्थितियों का सृजन करना चाहिए । डा. रामकुमार वर्मा आदर्शवादी लेखक हैं । अत: उन की कृतियों में चरित्रगत दिशा-परिवर्तन का अंकन हुआ है । कुछ नाटकों में उस के लिए आवश्यक परिस्थितियों की सफल कल्पना की गई है । लेकिन कुछ नाटकों में उस दिशा परिवर्तन के अनुकूल सशक्त परिस्थितियों के सृजना नहीं-से हो पायी --- केवल दो-तीन रेखाओं को खींच कर अपने अभीष्ट तक एकांकी की कार्य गति को पहुंचा दिया गया है ।

उदाहरण के रूप में " अठारह जुलाई की शाम " में उषा के हृदय परिवर्तन के लिए आवश्यक परिस्थितियों की कल्पना नहीं हुई। चरित्र के वैषम्य को उत्पन्न करने के हेतु ही राजेश्वरी पात्र की सृष्टि की गई है और उसी के द्वारा उषा अपनी भूल को पहचान लेती है। यह बात तो ठीक है कि बड़े नाटक की भांति इस में विस्तार के लिए स्थान नहीं है किन्तु उस सीमित परिधि में चरित्र के उस पहलू का संपूर्ण चित्र ही अंकित करना अपेक्षित है।

कथोपकथन :---- एकांकी में प्रथम स्थान पात्र और उस के मनोविज्ञान का है तो दूसरा स्थान संभाषण अथवा कथोपकथन का है। क्यों कि कथोपकथनों के द्वारा ही पात्रों के चरित्र तथा स्वभाव और उन के मानसिक आवेगों का स्पष्टीकरण होता है। इन के द्वारा नाटकीय परिस्थिति उत्पन्न होती है, वातावरण का निर्माण होता है, पृष्ठभूमि तैयार होती है। इन्हीं के द्वारा कथावस्तु के सूत्र आगे अग्रसर होते हैं और विरोधी पात्रों अथवा परिस्थितियों के द्वन्द्व का व्यक्तीकरण होता है। एकांकी के नाटकीय तत्त्व की संपूर्ण शक्ति कथोपकथनों में स्थित रहती है। कथोपकथनों का कार्य इस तरह बहुमुखी प्रयोजनों की पूर्ति करता है। अतः कथोपकथन संक्षिप्त, मर्मस्पर्शी वाक्वैदग्ध्ययुक्त होना चाहिए। संक्षिप्त परिधि होने के कारण एकांकीकार प्रत्येक शब्द का प्रयोग अधिक प्रभाव की व्यंजकता के लिए करता है। यहां प्रत्येक शब्द का अपना निजी महत्त्व रहता है। (०) एक भी ऐसा शब्द न प्रयुक्त होवे जिसका कोई प्रयोजन न हो। कथोपकथन उतने ही हो जितने पात्रों की क्रिया और प्रतिक्रिया द्वारा अपेक्षित हो। पात्रों के मनोभावों के अनुसार उन का अनुपात भी होना चाहिए। केवल मनोरंजन के लिए या नाटककार द्वारा सिद्धान्त प्रतिपादन के लिए कथोपकथन का विस्तार करना पात्रों के कण्ठों से उनकी स्वाभाविकता छीन लेना है। (ग) ऐसी स्थिति में पात्र नहीं बोलते, उन के कंठ में बैठकर नाटककार बोलने लगता है। कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक भाव का व्यक्तिकरण होना चाहिए। कथोपकथनों की गति के वक्र होने पर रोचकता का गुण बढ़ता है। उन की गति ऐसी न हो कि दर्शक या पाठक आगे के कथोपकथनों का ठीक अनुमान कर बैठे। डा. वर्मा के " समुद्रगुप्त पराक्रमांक " के कथोपकथन कथासूत्र को उपयुक्त ढंग से आगे बढ़ाते हैं।

---

(०) you have a painfully small number of words with which to accomplish a large effect, for events must in general be large on the stage. Therefore every word must count. Walter Prichard Eaton - P. 54

(ग) ऋतुराज -- डा. रामकुमार वर्मा पृ. १५.

भांडागार से अपहृत रत्नों तथा उन के अपहर्ता की खोज इस एकांकी की मुख्य समस्या है । एकांकी का उद्घाटन " तो अब यह निश्चय है कि भांडागार में वे रत्न नहीं हैं ? " -- वाक्य से होता है । उसी सूत्र से अनेक सूत्र निकलते जाते है और घटना चरमसीमा तक पहुंचती है । उसी प्रसंग के चारों या पाठक आगे के कथोपकथन का ठीक अनुमान नहीं कर सकते । हां, इस में धवलकीर्ति के प्रति संदेह की भावना पाठकों या दर्शकों में उत्पन्न होती है । डा. वर्मा के " श्री विक्रमादित्य " में इस तरह का लेश मात्र भी आभास नहीं मिलता । उस एकांकी के कथोपकथन इतने सशक्त हैं कि कदम कदम पर दर्शकों की जिज्ञासा बढ़ती जाती है और उनका अनुमान गलत निकलता जाता है ।

कथोपकथनों की भाषा पात्रों की स्थिति, शिक्षा चरित्र और वय के अनुरूप होनी चाहिए । पात्र ऐसी भाषा का प्रयोग करे कि जो कृत्रिम न होकर सहज स्वाभाविक हो । भाषा के संबंध में दो मत हैं। कुछ लोगों के अनुसार नाटकों में सर्वत्र एक सी भाषा प्रयुक्त हो, जिस के माध्यम से कथा-वस्तु की संपूर्ण संवेदना एक ही रूप से दर्शकों को प्राप्त हो । दूसरा मत इस प्रकार है ---- प्रत्येक व्यक्ति के स्वभाव और व्यक्तित्व के आधार पर उस की भाषा निर्धारित होती है । प्रत्येक मनुष्य की अपनी शैली रहती है । उस के बात करने का ढंग किसी अन्य से नहीं मिलता । अत: नाटकों में कथोपकथनों की शैली भी उन उन पात्रों के चरित्र तथा व्यक्तित्व के अनुरूप होनी चाहिए । पंडितों की विशुद्ध भाषा का प्रयोग जब नाटक में एक ग्रामीण किसान करने लगे तो स्वाभाविकता नष्ट हो जाती है । एकांकी हो नाटक में स्वाभाविकता की रक्षा करना विधेय है । यदि कोई विदेशी पात्र अपनी विशिष्ट प्रकृति से युक्त भाषा में अन्य पात्रों से वार्तालाप करता है तो उस की शैली से विनोद की सृष्टि होती है । नाटक में विविधता होगी और उस से कौतूहल की वृद्धि भी होती है । यदि विदेशी पात्र गंभीर तथा मुख्य हो तो उस की भाषा उस के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने में समर्थ होती है । अत: कथोपकथनों की भाषा पात्रानुकूल होनी चाहिए । इन दोनों मतों में, दूसरा मत मान्य तथा अनुकरणीय है । लेकिन कथोपकथनों की भाषा पात्रानुकूल होने का तात्पर्य कदापि यह नहीं कि उस में समग्र समरसता (TOTAL HARMONY) नहीं के बराबर हो । पात्रों के आपसी कथोपकथन एक दूसरे को अवगत न होने पावे और सब प्रकार के दर्शकों को समझने में कठिनाई हो । ऐसी भाषा का प्रयोग वांछनीय है जो पात्रों के स्वभाव को व्यंजित करने में समर्थ हो और साथ ही साथ सब प्रकार के सामाजिकों को उस का बोध हो ।

आधुनिक युग के एकांकीकार भाषा की स्वाभाविकता की रक्षा करने में जागरूक हैं। क्यों कि वे जानते हैं कि पात्र की परिस्थिति तथा वातावरण के अनपयुक्त भाषा का प्रयोग करने पर पात्र अस्वाभाविक हो जायेंगे और पात्रों के व्यक्तित्व के पीछे स्वयं वे ही बोलने लगते हैं। यद्यपि उन्हें सहज, विशुद्ध तथा साहित्यिक भाषा के प्रति अधिक श्रद्धा है तथापि वे अपने पात्रों के व्यक्तित्व को सुरक्षित रूप में ही प्रस्तुत करना चाहते हैं। (ट)

स्वाभाविकता की रक्षा के लिए " स्वगत कथन " का भी आधुनिक युग में निषेध किया गया है। विस्तृत स्वगत कथनों के लिए एकांकी में स्थान नहीं। उसका प्रयोग परिस्थितियों की अनुकूलता और प्रतिकूलता पर आधारित है। आवश्यकतानुसार स्वाभाविकता की रक्षा करते हुए एकांकीकार स्वगत कथनों का प्रयोग कर सकता है। लेकिन उन कथनों का अत्यन्त संक्षिप्त होना आवश्यक है।

अभिनयशीलता :--- एकांकी दृश्य काव्य है। अत: उसके सभी तत्व अभिनयात्मक तत्व में आ समाविष्ट होते हैं। अभिनय तत्व के अभाव में अन्य तत्वों का कोई अस्तित्व नहीं रहता। केवल अन्य तत्वों के निर्वाह से एकांकी का निर्माण नहीं होता। या तो वह पठनीय बन सकता या केवल संवाद मात्र है। सफल एकांकी का सृजन तभी संभव हो सकता है जब एकांकीकार रंगमंच की सुविधाओं का उपयोग पूर्ण रूप से करता है। क्यों कि एकांकी और रंगमंच का अन्योनाश्रित संबंध है। एक के अभाव में दूसरे के अस्तित्व का बोध ही नहीं होता। जैसे आत्मा का बोध शरीर में स्थित रहने तक ही होता है और शरीर के अभाव में उसका अनुभव असंभव है। रंगमंच एकांकी का शरीर है। अत: एकांकीकार को रंगमंच का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। अभिनय कला में पात्रों के मनोभाव, हावभाव, मुखमुद्राएं, वेशभूषा, संगीत, विविध प्रकार के कार्यों का प्रदर्शन की कला निहित है। रंगमंचीय साधनों के द्वारा एकांकी को आकर्षक बनाया जा सकता है। जो प्रभाव पाठ्य के द्वारा उत्पन्न नहीं कर सकते, उसको रंगमंच पर सुलभ ही उत्पन्न किया जा सकता है। इसलिए एकांकीकार सदैव इस ओर सजग रहें और रंगमंचीय साधनों से पूर्ण लाभ प्राप्त करें। (च)

(ट) यों हिन्दी की सहज, निशुद्ध और सौन्दर्य सम्पन्न विभूति मेरी श्रद्धा की वैसी ही अधिकारिणी है जैसी प्रयाग में त्रिवेणी की निरन्तर आगे बढ़ती हुई पावन तरंग

-- डा. रामकुमार वर्मा --- रेशमी टाई पृ. १६.

(ठ) Since the stage does certain things superbly well, it is the duty of the craftsman to make use of its.

अभिनयशीलता के प्रति सजग रहने के कारण आधुनिक युग में एकांकीकार अपने एकांकीयों के प्रारंभ में रंगमंच के निर्देशों का पूर्ण वर्णन दे रहे हैं। पाश्चात्य एकांकीकारों ने इस दिशा में अधिक उन्नति की है। हिन्दी में भी इस तरह के निर्देश दिये जा रहे हैं। इस प्रवृत्ति के मूल में एक ओर पाश्चात्य एकांकीकारों का अनुकरण और दूसरी ओर अभिनय शीलता के प्रति जागरूकता काम कर रही है। एकांकी के आरंभ में रंग निर्देशों का देना आवश्यक ही है। रंग निर्देशों से पाठकों तथा निर्देशकों को रंगमंच की संपूर्ण व्यवस्था का ज्ञान हो जाता है। यह बात तो मान्य है कि सफल निर्देशकों के लिए रंग निर्देशों की आवश्यकता नहीं पड़ती, वे अपनी निर्देशन-चातुरी से एकांकी के अभिनय तत्व के अनुकूल रंगमंच को संसिद्ध कर सकते हैं। लेकिन रंगमंच का विकास हिन्दी में नहीं हुआ है और उसका कोई स्थाई रंगमंच भी नहीं है। रंगमंच की उन्नति के लिए न केवल निर्देशकों की ही आवश्यकता है अपितु ऐसे लेखकों की भी मांग है जो अभिनयतत्व की रक्षा कर, उस के प्रस्तुतीकरण के योग्य तथा सफल रचनाओं का सृजन करते हैं। हिन्दी में निर्देशक नहीं के बराबर हैं पर एकांकीकारों की संख्या काफ़ी आशाजनक है। उन लेखकों के प्रयत्न से यह संभव होगा कि भविष्य में रंगनिर्देशकों के अभाव में भी निर्देशन कार्य को संभालनेवाले प्रतिभाशाली व्यक्ति उत्पन्न होंगे। यहां और एक बात स्पष्ट करने की है। अगर नाटकों के प्रस्तुतीकरण की प्रथा आधुनिक युग में रहे तो अभिनय तत्व तथा रंगनिर्देशों पर इतना अधिक बल देने की आवश्यकता नहीं पड़ती। ऐसी अवस्था में न लेखक को कल्पना के नेत्रों से रंगमंच का कुछ अनुभव कर रचना करना पड़ता है न एकांकियों के प्रस्तुतीकरण में निर्देशकों को लेखक की ओर ताकना पड़ता है। क्यों कि उन के द्वारा एकांकी प्रस्तुत किये जाते हैं और अनुभव के द्वारा सहज ही लेखकों और निर्देशकों में पारस्परिक अवगति (mutual understanding) उत्पन्न होती है।

(क) :-- capabilities from one end of the key board to the other, to appeal to emotions, since that is its natural gesture; to be vivid powerful and direct. He has to chose the play form because it can cope with his materials. It is for him to exploit it.

— Percival Wilde. The Construction of the One Act play. P. 20

अब लेखक ही निर्देशक होकर प्रस्तुतीकरण की सुविधाओं की कल्पना कर रहा है । निर्देशकों को उत्पन्न करने के लिए लेखकों का यह प्रयत्न श्लाघनीय ही है । रंगमंच की व्यवस्था तथा पात्रों और कथावस्तु की पृष्ठ-भूमि को स्पष्ट करने के लिए कुछ एकांकीकार अत्यन्त विस्तृत योजनाएं नाटक के प्रारंभ में देते हैं । कवित्वपूर्ण शैली में उन संकेतों की रचना की जाती है । इस तरह के रंग संकेतों को देने में लेखक का यह उद्देश्य रहता है कि पाठक अपनी कल्पना - चक्षुओं से नाटक को आनंद उठा सकें । कुछ लोगों के विचार से इस तरह के विस्तृत संकेत अनावश्यक हैं । पाठक अथवा निर्देशक की कल्पना-शील प्रतिभा को असमर्थ प्रमाणित कर लेखक अपनी कल्पनाओं को उन पर जबरदस्ती लाद रहे हैं । वे पाठकों तथा निर्देशकों को बाध्य कर रहे हैं कि अपनी कल्पना की सांस में सांस ले । लेकिन हमारा विचार यह है कि लेखक किसी को बाध्य नहीं करता । वह अपनी रचना केवल सुसंस्कृत तथा सुशिक्षित दर्शक और पाठकों को दृष्टि में रखकर नहीं करता । उस के सम्मुख ऐसे असंख्य साधारण दर्शक और पाठक भी रहते हैं जिनका विचार उसे अवश्य करना पड़ता है । क्यों कि जैसे वह अपने नाटक का निर्माण विश्व-जनीन तथ्यों को लेकर करता है वैसे उस से उत्पन्न आनंद को भी विश्व-जनीन बनाना चाहता है । वह अपनी ओर से पूर्ण सामग्री प्रस्तुत करता है और साधारण पाठकों अथवा दर्शकों की कलात्मक तथा कल्पनात्मक सुरुचि को विकसित करना उसका अभीष्ट होता है । इस दृष्टिकोण से देखने पर उस के द्वारा प्रस्तुत विस्तृत रंग संकेत अनावश्यक नहीं जान पड़ते । सुशिक्षित सुसंस्कृत एवं कलाविद पाठक उन रंग संकेतों के पृष्ठों को छोड़कर एकांकी का पठन कर सकते हैं और कुशल निर्देशक भी उन की ओर बिना देखे अपने प्रस्तुतीकरण का कार्य संभाल सकते हैं । रंगसंकेतों के अभाव का अनुभव उन को उतना नहीं होता, ~~जितना साधारण पाठकों अथवा उन को उतना नहीं होता~~। जितना साधारण पाठकों अथवा निर्देशकों को होता है । दृश्य विधान का विवरण देना उस स्थिति में अनिवार्य हो जाता है जब कि लेखक को यह आभास होने लगता है कि एक विशिष्ट वायुमण्डल में रहने वाले उस के पात्रों की अभिरुचि को संभवतः नाटक खेलनेवाले आकलित कर न पायेंगे । ऐसी स्थिति में नाटककार अपने पात्रों की रुचि के अनुसार दृश्य-विधान के भीतर एक विशेष प्रकार का वायुमण्डल, विवरण में दी गई सामग्री के द्वारा उत्पन्न करने के साधन प्रस्तुत करते हैं । इस तरह रंगसंकेतों से एकांकी सुपाठ्य बन जाते हैं और अभिनय में नटों तथा निर्देशकों को सहायता प्राप्त होती है ।

एकांकियों का वर्गीकरण :-- विषय वस्तु तथा शैलीगत विभिन्नता को दृष्टि में रखकर एकांकियों को वर्गों में विभाजित किया गया है। इस प्रकार के वर्गीकरण से एकांकियों के अध्ययन करने में सुविधा तो प्राप्त होती है। पर किसी भी सृजनात्मक साहित्यिक विधा आलोचकों के वर्गीकरण की सीमाओं में बन्धे नहीं रहती। लेखकों की सृजन शक्ति को सीमा में बांधने की चेष्टा वास्तव में असाध्य है। पर अध्ययन शील आलोचकों का प्रयत्न भी कम महत्व का नहीं है। उन की विवेचना शक्ति से लेखकों की सृजनात्मिक शक्ति को बल प्राप्त होता है। सृजन की नयी दिशाओं का बोध उन्हें हो जाता है। पाश्चात्य प्रणाली के आधार पर प्रकार व शैली को दृष्टि में रखकर प्रो. अमरनाथ गुप्त ने निम्नलिखित वर्गों में एकांकी का विभाजन किया है।

१. समस्यामूलक एकांकी जिसका निर्माण किसी समस्या को लेकर लेखक करता है। इन का दूसरा नाम Problem play भी है।

२. खुले स्थान पर खेले जाने वाले एकांकी जिन्हे Fantacy भी कहते हैं इस का विषय मनुष्य का जीवन न हो कर प्रकृति और वस्तुओं का ही मनोरंजक चित्रण है।

३. प्रहसन जिस में लेखक का ध्येय स्वयं हंसना और दूसरों को हंसाने का होता है।

४. ऐसे एकांकी जिन्हे हमें Serious कह सकते हैं और जो किसी साहित्य की उत्तम से उत्तम बड़ी रचना का मुकाबला कर सकते हैं।

५. ऐसे एकांकी जिन में लेखक का ध्येय किसी घटना किसी देश के रीति रिवाज आदि पर कटाक्ष करना होता है।

६. Melodramatic एकांकी -- किसी के दुःख में दुःखी होने के बदले जब हम हंसते हैं तब घटना melodramatic हो जाती है।

७. ऐसे एकांकी जिनका अंत आनंदमय है परन्तु जिनका विषय गरीब मजदूरों आदि का जीवन है।

८. ऐतिहासिक एकांकी

९. व्यंग्यात्मक एकांकी

१०. Harlequinade एकांकी जो स्वांग के ढंग पर लिखे जाते हो।

११. Cockney एकांकी -- मजदूरों की विकृत भाषा में ही लिखे गये एकांकी ।

१२. सामाजिक एकांकी । (०)

डा. नगेन्द्र ने एकांकियों के विभेदों का उल्लेख इस प्रकार किया है -

१. सुनिश्चित टैकनीकवाला एकांकी जिस में संकलन त्रय हो तो श्रेष्ट है । भले ही स्थान और काल की एकता का निर्वाह न किया गया हो पर प्रभाव और वस्तु का ऐक्य अनिवार्य है ।

२. संवाद या संभाषण -- उदाहरण के रूप में पं. हरिशंकर शर्मा रचित हास्य व्यंग्यमय संवाद चिड़िया घर ले सकते हैं ।

३. मोनो ड्रामा जिस में एक ही पात्र होता है ।

४. फीचर --- यह अत्यन्त आधुनिक प्रयोग रेडियो का आविष्कार है । इस का स्वरूप प्राय: सूचनात्मक होता है इस में किसी विषय विशेष पर प्रकाश डालने के लिए उस से सम्बद्ध बातों का नाट्य-सा किया जाता है । उदा- " प्रेमचन्द की दुनिया " , " दिल्ली की दीवाली "

५. फैंटसी -- एकांकी का अत्यन्त रोमाण्टिक रूप है । इस के लिए लेखक का दृष्टिकोण एकान्त वस्तुगत और स्वच्छन्द हो और उस में कल्पना का मुक्त विहार होना चाहिए । जैसे डा. रामकुमार वर्मा का " बादल की मृत्यु "

६. कांकी -- इसे एकांकी का शुद्ध रूप समझना चाहिए । इस में केवल एक ही दृश्य होता है, अत: स्थान और समय के ऐक्य का भी पूरा निर्वाह हो जाता है ।

७. रेडियो प्ले -- इस का एकांकी से कोई मौलिक भेद नहीं है । रेडियो की आवश्यकता के अनुसार उस में दृश्य अंश न्यून से न्यून और श्रव्य अंश अधिक से अधिक होता है । (७)

---

(०) एकांकी नाटक पृ. २५ - २७ प्रो. अमरनाथ गुप्त.

(७) आधुनिक हिन्दी नाटक -- डा. नगेन्द्र पृ. १२८ - १३०.

डा. सत्येन्द्र ने विषय के आधार पर और प्रवृत्ति के आधार पर एकांकियों के ये भेद किये हैं। विषय के आधार पर चार भेद किये जा सकते हैं।
१. ऐतिहासिक २. राजनीतिक ३. चारित्रिक ४. तथ्य प्रदर्शक,
५. मूल वृत्ति के आधार पर आठ वर्गों में विभाजित किया है।
१. आलोचक एकांकी जो कमजोरियों को उभारते हैं। २. विवेकवान एकांकी जिन में आलोचना - प्रत्यालोचना की जाती है। ३. भावुक एकांकी जिन में भावुकता अधिक रहती है। ४. समस्या एकांकी ५. अनुभूतिमय एकांकी ६. व्याख्यामूलक एकांकी ७. आदर्शमूलक एकांकी।
८. प्रगतिवादी एकांकी। शैली के आधार पर और एक वर्गीकरण किया गया है जो इस प्रकार है ---१ सीधी सादी शैली २. व्यंग्यात्मक शैली ३. हास्यपूर्ण नाटक ४. बौद्धिक और कलात्मक ५. समस्यामूलक एकांकी।

डा. रामचरण महेन्द्र ने निम्नलिखित नौ भेदों का उल्लेख किया है ---
१. सुखान्त जिन में आनंद दायक क्षण या समस्या प्रस्तुत किया जाता है
२. दुःखान्त जिन में किसी दुःखपूर्ण क्षण को उद्दीप्त किया जाता है ३. प्रहसन जिस का उद्देश्य हंसना और दूसरों को हंसाकर समाज सुधार करना होता है। ४. फैंटसी -- अति नाटकीय रोमान्टिक स्वरूप है जिस का ताना बाना स्वप्न से बना हुआ होता है।
५. गीति नाट्य या ओपेरा जिस में कविता या गीतों के काव्यमय माध्यम से कल्पना और भाव प्रकाशन द्वारा एकांकीकार किसी भावपूर्ण स्थल या घटना का चित्रण करता है। ६. झांकी इस मे केवल एक संक्षिप्त दृश्य में तीनों एकाश्यों का निर्वाह करते हुए किसी उद्दीप्त क्षण को निश्चित कर दिया जाता है। ७. संवाद - यह एकांकी का प्रारंभिक स्वरूप है जिस में दो पात्रों के कथोपकथन द्वारा किसी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जाता है।
८. मोनो ड्रामा -- जिस में केवल एक पात्र स्वगत के रूप में किसी पूर्व घटना का आप बीती को व्यक्त करता है।
९. रेडियो प्ले। (७)

इन सब भेद विभेदों में जो शैली की दृष्टि में रखकर किये गये हैं उन की संख्या बढ़ती ही जाती है। क्योंकि नयी नयी शैलियों के अविष्कार लेखक प्रत्येक युग में करते रहते हैं। हमारे मत में एकांकियों का वर्गीकरण दो प्रकार से किया जा सकता है। एक रंगमंच की दृष्टि से, दूसरा विषय की दृष्टि से।

~~दूसरा विषय की दृष्टि से~~ । यों तो रंगमंच पर ही एकांकी अभिनीत होते हैं । लेकिन आधुनिक युग में रेडियो भी एक तरह के रंगमंच का काम कर रहा है । रंगमंचीय एकांकी और रेडियो एकांकी की भिन्नता उन के प्रस्तुतीकरण करने के भेद के कारण उत्पन्न हुई है । इस दृष्टि से एकांकी के दो भेद होते हैं --

१. रंगमंचीय एकांकी २. रेडियो एकांकी.

विषय वस्तु के आधार पर मोटे तौर से एकांकियों के दो वर्ग बनाये जा सकते हैं । १. सामाजिक २. ऐतिहासिक यों तो इस तरह के और भी वर्गों का उल्लेख आलोचकों 57(0) के द्वारा किया गया है जैसे राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक , मनोवैज्ञानिक , पौराणिक इत्यादि । लेकिन ये सब भेद उपर्युक्त दो भेदों के अंतर्गत आ जाते हैं । सामाजिक एकांकी ऐसे एकांकी हैं जिन में राजनीति, अर्थ , धर्म मनोविज्ञान । परिवार आदि किसी भी क्षेत्र का विषय क्या वस्तु के रूप में लिया जा सकता है । राजनीति , धर्म परिवार। सभी समाज के ही अंग हैं और वे समाज के लिए ही बने हैं । ऐतिहासिक एकांकी वे हैं जिन में अतीत के इतिहास की विषय-वस्तु वर्णित होती है। इस के अंतर्गत पौराणिक एकांकी का भेद आ जाता है । जैसे पहले ही कहा जा चुका है, यह वर्गीकरण अध्ययन की सुविधा के हेतु किया जाता है न कि भेद-विभेदों की संख्या बढ़ाकर उस विधा के महत्व को स्पष्ट करने के लिए । अतः एकांकी के दो दृष्टि कोणों से चार प्रकार प्रमुख हैं । १. रंगमंचीय एकांकी २. रेडियो एकांकी ३. सामाजिक एकांकी ४. राजनीतिक एकांकी ।

57(0) डा. रामचरण महेन्द्र -- हिन्दी एकांकी : उद्भव और विकास पृ. ३८ - ३९ .